

• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गो जयतः •

✽	स वं पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।	✽
धर्मः स्वशुद्धितः पुसां विष्वक्मेन कथाशु यः	<p>भागवत-पत्रिका</p>	तोरुवावयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम्
✽	अहेतुकप्रतिहता घयात्मासुप्रसीदति ।	✽

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की ग्रहेतुकी विघ्नशून्य प्रति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंचनकर ।

वर्ष ११ { गौराब्द ४७६, मास—दामोदर ७, वार—वासुदेव } संख्या ५
रविवार, ३० आश्विन, सम्बत् २०२२, १७ अक्टूबर, १९६५

श्रीश्रीगोपालराज-स्तोत्रम्

[श्रील-रघुनाथदास-गोस्वामी-विरचितम्]

श्रीश्रीगोपालराजाय नमः

वपुरतुल-तमालस्फीत-बाहुरुशाखो-परिधृत-गिरिवर्य-स्वर्णवर्णकगुच्छः ।
कटिहृत-परहस्तारक्त-शाखाग्रहृद्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥१॥

रुचिर-दृग्गामिधाने पङ्कजे फुल्लपन्तं सुभग-वदन-गात्रं चित्रचन्द्रं दधानः ।
विलसदधरबिम्ब-ध्रायिनासा सुकोष्ठः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥२॥

चल-कुटिलतर भ्रुकामूं कान्तहं गन्त क्रमण-निशितवारुणं शीघ्रयाणं दधानः ।
दरयितुमिव राधावैर्य-पारीन्द्रवर्यं प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥३॥

असुलभमिह राधावक्त्र-चुम्बं विजानन्निव विलसितुमेतच्छाययापि प्रदूरात् ।
मुकुर-युगलमच्छं गण्ड-दंभेन विभ्रत् प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥४॥

रुचिनिकर-विराजद्दृग्मी-पक्वबीज-प्रकरविजयि दन्तश्रेणी-सौरभ्यवातैः ।
रचित-युवति-चेतः कीर-जिह्वाति-लौत्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥५॥

वचन-मधु-रसानां पायनैर्गोपरामा-कुवमुरुधृत-धामाप्युन्मदीकृत्य कामम्
 अभिमत-रतिररनान्याददानस्ततोद्राक् प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥६॥

कुवलय-निभभाले कौङ्कुमद्रावपुण्ड्रे दधदिव घनवण्डे निदचलच्चचंलाप्रम् ।
 रचयितुमिव साध्वी-कीर्ति-मुग्धालि-भीति प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥७॥

श्वरण-मदन-रञ्जु सज्जयल्लज्जि-राधा-नयन-चल-चकोरो बन्धुमुत्कः किशोरी ।
 कृत-मकर-वतंस-स्निग्ध-चद्रांशु-चारः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥८॥

युवति-करणरत्न-घातमाच्छिद्य नेत्र-भ्रमणपटुभटंस्तं-न्यस्त हृत्सोध-मध्ये ।
 गरुडमणि-कवाटेनोरसाघुष्य हृष्टः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥९॥

त्रिवलि-ललित-तुन्दस्यन्दि-नामीह्वदोद्य-तनुरुहतति सर्पौमत्र विभ्राण उप्राम् ।
 युवति-पतिमयाषु-प्रासनायेव सद्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥१०॥

मरकतकृत-रभ्रभागवं-सर्वकवोरु-द्वयमुरु-रसधाम प्रेयसीनां दधानः ।
 स्फुरदविः स-पुष्ट-श्रीणिभारातिरम्यः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥११॥

मदन-मणिवरावली-संपुष्ट-क्षुल्लजानु-द्वय-मुललित-जङ्घामंजु पादाब्जयुग्मः ।
 विविध वसन-भूषा-भूषिताङ्गः सुकण्ठः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥१२॥

कलित-वपुरिव श्रीविट्टल-प्रेमपुंजः परिजन-परिचर्या-धैर्यं-पीयूष-पुष्टः ।
 द्युतिभर-जितमाद्यन् मन्मथोद्यत् समाजः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥१३॥

विविध-भजन पुष्परिष्ट-नामानि गृह्णन् पुलकि-तन्नरिह श्रीविट्टलस्योरु-सहयैः ।
 प्रणय-मणिसरं स्वं हन्त तस्मै ददानः प्रतपति गिरिपट्टे सुष्ठु गोपालराजः ॥१४॥

गिरिकुल-पति पट्टोज्जासि-गोपालराज-स्तुति-विलसित-पद्यान्युद्भट-प्रेमवानि ।
 नटयति रसनाप्रे श्रद्धया निभरं यः स सपदि लभते तत् प्रेमरत्नं प्रसादम् ॥१५॥

अनुवाद—

जिनके देह रूप निरूपम तमालवृक्षकी सुदीर्घ बाहुरूप शाखाके ऊपर धारण किये गये गिरिराज गोवर्द्धन स्वर्णवर्णके एक गुच्छकी भाँति सुशोभित हो रहे हैं और जिनका दाहिना हाथ कमर पर रखा होनेके कारण करस्थित लाल-लाल अंगुलियोंके अप्र-भाग अतिशय मनोहर एवं शोभाविशिष्ट हो रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अर्थात् गोवर्द्धन-पर्वतके एक प्रान्तमें राजाके बैठने योग्य एक उपयुक्त स्थानमें

प्रसापी होकर सुन्दर रूपमें विराजमान हो रहे हैं ॥१॥

जो अति सुन्दर मुखरूप चन्द्रको धारण करके मनोहर नयन नामक दो कमलोंको प्रभुदित कर रहे हैं, जिनकी शुकपत्नी जैसी सुन्दर नासिका विलास-शाली अधरबिम्बका आघ्राण कर रही है, वे गोपा-लराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोहर रूपमें विराजमान हो रहे हैं ॥२॥

जिन्होंने श्रीमती राधिकाके धैर्यरूप सिंहराजको

विदीर्ण करनेके लिये मानों चञ्चल और कुटिल ध्रुवी धनुष पर अगङ्ग संचालनरूप (कटाक्षरूपी) द्रुतगामी तीक्ष्ण शरका संधान किया है, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोहर रूपमें विराजमान हो रहे हैं ॥३॥

श्रीराधिकाका अधर-पान करना मेरे लिये अत्यन्त दुर्लभ है—प्रेता जानकर जो अत्यन्त दूरसे ही उनके प्रतिबिम्ब द्वारा विलासानुभव करनेके लिये अपने गण्डस्थलसे सटाकर दो दर्पण धारण किये हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपमें विराजमान हैं ॥४॥

जो अतिशय कान्तियुक्त अनारके सुपक्क बीजों को अपनी कान्तिद्वारा पराभूत करनेवाले अपनी दंतपंक्तिकी सुगन्धिसे ओतःप्रोत वायु द्वारा ब्रज-रमणियोंकी चित्तरूप शुक्र-जिह्वाको चञ्चल बना रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपमें विराजमान हैं ॥५॥

गोप-रमणियाँ अत्यन्त प्रभावशालिनी होने पर भी उनको जो वाणी रूप मधु-रस पान कराकर प्रचुर उन्मत्त बनाकर उनसे शीघ्र ही स्वाभिष्ट रति-रत्न ग्रहण कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरमरूपसे विराजमान हैं ॥६॥

जिन्होंने अपने नील-कमल सदृश नीलाम मस्तक पर कुंकुमका मनोहर तिलक धारण कर रखा है, मानों नीले बादलोंके बीच स्थिररूपसे बिजली जगमगा रही हो और जिनका वह तिलक सती-रमणियाँ—गोपियोंकी कीर्त्ति अर्थात् सतीत्वरूप मुग्ध

ध्रमरको भयभीत करनेवाला है, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोरम रूपमें विराजमान हैं ॥७॥

जो लज्जावती श्रीराधिकाके नयनरूप चञ्चल एवं किशोर चकोर युगलको बाँधनेके लिये उत्सुक होकर भवणरूप मदन-रञ्जुको मकराकृति कुण्डलद्वारा सुसज्जित करके मनोहर चन्द्र-किरणोंका (सौन्दर्य किरणोंका) विस्तार कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपमें विराजमान हो रहे हैं ॥८॥

जो ब्रजयुवतियोंकी इन्द्रियरूप रत्नराशिको नेत्र संचालनरूप कुशल योद्धाद्वारा हरण कराकर अपने हृदय रूप अट्टालिकामें डालकर गरुडमणि द्वारा निर्मित कपाट रूप वक्षःस्थलद्वारा नीवीबन्धमें मुद्रादिकी भाँति स्थापन कर उल्लसित हो रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपमें विराजमान हो रहे हैं ॥९॥

जिन्होंने ब्रज-युवतियोंके पतिभय रूप चूहेको निगलनेके लिये अपने त्रिरेखाङ्कित सुललित उदर पर तरल वस्तुकी तरह धाराके रूपमें प्रबाहित अथवा नाभि-हृदसे उदियमाना रोमराजिको धारण कर रखा है, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापपूर्वक मनोहर रूपमें विराजमान हैं ॥१०॥

जो श्रीमती राधा आदि प्रेयसियोंके रसाभयके स्थान स्वरूप हरिद्वर्ण मरकतमणिद्वारा निर्मित कदली वृक्षके गर्वको चूर्ण-बिचूर्ण करनेवाले उस युगलको धारण किये हैं एवं जो परस्पर संलग्न और परितुष्ट

नितम्ब भावसे रमणीय हो रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें अत्यन्त प्रतापशाली होकर मनोहर रूपमें विराजमान हैं ॥११॥

मदन-मणि-निर्मित संपुष्ट अर्थात् ताम्बुल-पेटिका भी जिनके निकट लुद्र प्रतीत होती है, वैसे जानुद्वयद्वारा जिनके जंघे और मनुज चरणकमल सुललित (दीख पड़ते) हैं और जिनके अङ्ग नाना प्रकारके वस्त्रा-भूषणोंसे विभूषित हैं, वे सुकण्ठ गोपालराज गिरि-पट्टमें प्रतापशाली होकर मनोहर रूपमें विराजमान हैं ॥१२॥

जो अपने विशेष-अवतार—श्रीविठ्ठलके मूर्त्ति-मान-प्रेमराशि-स्वरूप हैं, परिजनोंके परिचर्यारूप उत्कृष्ट अमृत भोगसे जिनका अङ्ग पुष्ट है और जो

कान्तिमालाद्वारा समुद्यत मन्मथ-समाजको पराजित कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापशाली होकर मनोहर रूपमें विराजमान हैं ॥१३॥

जो श्रीविठ्ठलके सख्यप्रधान विविध भजनरूप पुष्प द्वारा पुलकित होकर इष्टनाम ग्रहणपूर्वक उक्त श्रीविठ्ठलेश्वरको प्रणयरूप मणिमाला अर्पण कर रहे हैं, वे गोपालराज गिरिपट्टमें प्रतापयुक्त होकर मनोहर रूपमें विराजमान हैं ॥१४॥

जो गिरिराज गोवर्द्धनके पट्ट-देशमें उल्लासशील गोपालराज की स्तुति सुशोभित इस पद्यावलीका अतिशय प्रेमप्रदरूपमें रसनाके अग्रभागमें श्रद्धापूर्वक नृत्य कराते हैं अर्थात् निरन्तर पाठ करते हैं, वे शीघ्र ही श्रीकृष्णकी प्रसन्नतासे युक्त प्रेमरत्न लाभ करनेमें समर्थ होते हैं ॥१५॥

भक्तोंकी निष्ठा

त्वद्भक्तः सरितां पतिं चुलुकवत् खद्योतवद्भास्करं ।
मेरुं पश्यति लोष्ट्रवत् किमपरं भूमेः पतिं भृत्यवत् ॥
चिन्तारत्नचयं शिलाशकलवत् कल्पद्रुमं काष्ठवत् ।
संसार तृणराशिवत् किमपरं देहं निजं भारवत् ॥

भक्तिनिष्ठ श्रीसर्वज्ञजी भक्तोंकी स्थितिका वर्णन करते हुए कहते हैं कि—हे भगवन् ! तुम्हारे भक्त समुद्रको चुल्लूके समान, सूर्यको खद्योतके समान, सुमेरु पर्वतकी मिट्टीके ढेलेके समान सम्राट् चक्रवती राजाको सेवकके समान, चिन्तामणिके समूह को पत्थरके टुकड़ेके समान, कल्पवृक्षको साधारण काष्ठके समान, संसारको तृणके ढेरके समान देखते हैं । और विशेष क्या कहें, आपके वियोगमें उनका शरीर भी भारवत् प्रतीत होता है ।

(पद्यावली से)

स्मार्त्त और वैष्णव

जब जीव देह और मनके प्रति आत्मबुद्धि कर स्वयं फल भोग करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके कर्मों को करता है, तब उसे स्मार्त्त कहते हैं। जो जीव भगवानके अथवा साधुजनोंके शरणागत नहीं होते, केवल अपने इन्द्रिय सुखकी प्राप्तीकी चेष्टामें ही लगे होते हैं, ऐसे लोगोंको शासनमें रखनेके लिये स्मृतियों की विधियाँ (विधान समूह) रचित हुई हैं। जो व्यक्ति सब समय केवल अपने स्वार्थके लिये भूठ, कपट, असदाचार, परद्रव्यमें लोभ, परहिंसा इत्यादि असत् कार्योंमें रत होते हैं, उनके इन सभी कुप्रवृत्तियों का संकोच करनेके लिये स्मृतियोंमें कठोर आदेश दिये गये हैं। इसलिये स्मृतियोंमें लिखे गये कार्य-समूह नित्य नहीं हैं—नैमित्तिक-मात्र हैं अर्थात् किसी निमित्त या कारणका अवलम्बन करके निर्दिष्ट हुए हैं। किन्तु भगवत्-सम्बन्धी कार्य-समूह नित्य हैं। क्योंकि वहाँ सभी कार्योंके फल-भोक्ता स्वयं भगवान हैं और वे सभी कार्य केवल भगवद् उद्देश्यसे ही किये जाते हैं। वे सभी कार्य बादमें भी नित्यकाल तक किये जायेंगे। स्मार्त्त रघुनन्दनके अष्टाविंशति तत्त्वमें बताया गये 'दायभाग', 'संस्कार', शुद्धि-निर्णय', 'प्रायश्चित्त', 'श्राद्ध' आदि कार्य केवल मनुष्यके सौ वर्ष परमायुकाल तकके लिये ही हैं अर्थात् ये सभी कार्य मनुष्य के जीवित अवस्था तक ही लाभदायक हैं। इन सब कार्योंका फलभोक्ता भी मनुष्य ही है। वहाँ जीवके वास्तविक स्वरूप सम्बन्धी किसी कार्यका उल्लेख नहीं है। दुर्गात्सव और एकादशी आदिका निर्णय, वृषोत्सर्ग आदि कार्य भी

केवल भुक्ति-मुक्ति मूलक मात्र हैं। इसलिये ये सभी कार्य नैमित्तिक हैं। किन्तु भगवानके शरणागत वैष्णवोंको कोई भी नैमित्तिक कर्म नहीं करने पड़ते। वे भगवानको ही एकमात्र फलभोक्ता जानते हैं और सर्वदा ही उन्हींके उद्देश्यसे नित्य भगवत् भक्ति सम्बन्धी कार्य किया करते हैं। वे जानते हैं कि—

स्मर्तव्यः सततं विष्णुविस्मर्तव्यो न जातुचित् ।

सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥

(भक्तिरसामृतसिन्धुधृत पाद्मवचन)

अर्थात् सर्वदा विष्णुका ही स्मरण करना चाहिये यही एकमात्र विधि है और विष्णुको कदापि नहीं भूलना चाहिये—यही निषेध है। इन दो विधि और निषेध वाक्योंका अवलम्बन कर समस्त विधि-निषेध विधान समूहोंकी रचना हुई है। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो कार्य करनेसे भगवान विष्णुका सर्वदा स्मरण होता है, वही कार्य विधि है और जिस कार्यके द्वारा भगवानका विस्मरण हो, वही कार्य निषेध है।

वैष्णवगण भगवानके शरणागत हैं, अतएव उनके सभी कर्म भगवानकी सेवाके उद्देश्यसे होते हैं। भगवानके साथ सम्बन्ध होनेके कारण वैष्णव निर्मत्सर और अकाम होते हैं। जगतमें बड़े बनकर दूसरोंको नीचा दिखलानेकी, अथवा बहुतसे याग, यज्ञ, ध्यान, जप, तपस्या, श्राद्ध, तर्पण, अनेक तीर्थ-भ्रमण, दुर्गात्सवमें बहुतसे प्राणियोंकी बलि आदिके द्वारा संसारमें नाम कमानेकी या परलोकमें स्वर्गादि

प्राप्त करनेकी तनिक भी इच्छा उनके हृदयमें नहीं होती अथवा जन्म-मृत्युसे उद्धार पाकर मुक्तिमुख भोग करनेकी भी इच्छा उनमें नहीं होती । उनके करोड़ों जन्म हों अथवा नरकमें भी वास क्यों न हो, लदि उससे उनके आराध्यदेवकी सेवा हो तो वही उनके लिये प्रार्थनीय है । भगवन् प्रीतिमें ही उनकी प्रीति है । श्रीमद्भागवतके अजामिल उपाख्यानमें यमराज अपने दूतोंसे कहते हैं—दूसरोंकी बात ही क्या, जैमिनी अथवा मनु जैसे कर्मकाण्डपरायण व्यक्ति हरिभक्तोंके स्वभावसे सम्यक् रूपसे परिचित नहीं हैं । क्योंकि उनकी बुद्धि त्रिगुणात्मक मधुपुष्पित वाक्योंसे मोहित है । उनकी विवेकशक्ति देवीमायाके द्वारा आच्छादित है । इसलिये वे लोग स्मृतियोंके बहुत विस्तारयुक्त कर्मसमूहों का ही ज्यादा आदर करते हैं । देहात्मबुद्धि होनेके कारण “कामुकाः पश्यन्ति कामिनीमयं जगत्” (अर्थात् कामुक व्यक्ति जगतमें सर्वत्र ही कामिनियोंका दर्शन करते हैं)—न्यायसे वे लोग शुद्ध वैष्णवोंकी भक्तिचेष्टाओंमें भी नाना प्रकारके दोष ढूँढ़ते हैं । उनके पादोदक (चरण-जल) को साधारण जल समझते हैं, भगवानकी श्रीमूर्तिको शुद्रोंद्वारा स्पर्श होनेके कारण अपवित्र मानकर पञ्चगव्यादि द्वारा उनको पवित्र करनेका प्रयास करते हैं—अर्थात् साक्षात् भगवान्में भी स्पर्श दोष सम्भव है और गोमय आदि भगवानको भी पवित्र कर सकते हैं—वे ऐसी भ्रान्त धारणा रखते हैं । वे वैष्णवोंमें जातिबुद्धि करते हैं, भगवान के प्रसादको साधारण दाल-भात समझकर स्पर्श दोषसे वह अपवित्र हो सकता है—ऐसा समझते हैं; उनके मतानुसार गुरुदेव यदि शिष्यके पकाए हुए

अन्नको ग्रहण करे या भगवानको वह अन्न निवेदित हो, तो गुरु एवं भगवान जाति-भ्रष्ट हो जायेंगे । वे लोग वैष्णवोंको कर्मफलबाध्य समझते हैं । कच्चे चावलका अन्न भोजन करना, त्रिसन्ध्या स्नान करना, रास्तेको लांघकर चलना, रेशमी कपड़े पहनना आदि कार्योंमें ही भगवद्भक्ति है—ऐसी उनकी धारणा है । आसुर वर्णाश्रम-धर्मके उद्दिष्ट कार्य न करने पर प्रत्यवाय (दोष) होगा, ऐसा वे समझते हैं । धर्मको समाजके अधीन समझते हैं एवं भगवद्विरोधी समाजका बहुत आदर करते हैं । प्रमाण-शिरोमणि सिद्धान्तसारस्वरूप श्रीमद्भगद्गीतामें भगवान स्वयं कहते हैं—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।

ग्रहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि सा शुचः ॥

अर्थात् समस्त वर्ण और आश्रम धर्मका परित्याग कर तुम एकमात्र मेरी शरण ग्रहण करो । उन वर्ण और आश्रमोचित कर्म न करनेसे जो पाप होगा, उससे मैं तुम्हें मुक्त करूँगा ।

पुनः तीसरे अध्यायमें भी भगवान कहते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषः ।

भुञ्जन्ते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

अर्थात् जो साधुव्यक्ति भगवानका उच्छिष्ट ग्रहण करते हैं, वे ही कर्ममार्गमें कहे गये पञ्चसूनादि समस्त पापोंसे मुक्त होते हैं । जो व्यक्ति स्वयं भक्ता बनकर अपने भोगके लिये संग्रह करते हैं, अथवा भोग करते हैं, वे पाप ही भोजन करते हैं । श्रीमद्भगवद्गीतामें अन्यत्र भी कहते हैं—

“यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।”

जो भी कर्म किये जाँय, वे सभी कर्म यज्ञ अर्थात् एकमात्र भगवान् विष्णुकी प्रीतिके लिये किये जाँय । अन्यथा ये सभी कार्य केवल बन्धनके ही कारण होते हैं । विष्णुके लिये कर्म करना ही भक्ति है । वही भक्ति ही पराभक्तिमें परिणत हो सकती है । श्रीनारदपञ्चरात्रमें कहते हैं—

सुरर्षे विहिता शास्त्रे हरिमुद्दिश्य या क्रिया ।
सर्व भक्तिरिति प्रोक्ता यथा भक्तिः परामवेदिति ॥

अन्यत्र भी कहते हैं—

लौकिकी वैदिकी वापि या क्रिया क्रियते मुने ।
हरिसेवानुकुलं सा कार्या भक्तिमिच्छता ॥

जिन्हें भक्ति पानेकी इच्छा है, उन्हें सभी कर्म, चाहे लौकिक हो, वैदिक हो अथवा कोई भी कर्म हो, एकमात्र हरिसेवाके उद्देश्यसे ही करना चाहिये । इसीलिये भक्तोंके सभी कार्य सब प्रकारके पापोंसे रहित और निर्गुण पराभक्ति लाभ करनेमें सहायक होते हैं क्योंकि उनका एकमात्र तात्पर्य भगवत् प्रीति-विधान है । अभक्तोंके (स्मार्त्तोंके) सभी कार्य पापयुक्त होते हैं, क्योंकि उनका तात्पर्य आत्मेन्द्रिय-तृप्ति है । स्मार्त्तोंके द्वारा सत्कार्य समझे जाने वाले कार्य भी पापोंसे रहित नहीं हैं । जैसे सात्त्विक भोजन करना एक सत्कार्य है, किन्तु कर्मी लोग यदि सात्त्विक द्रव्य भी ग्रहण करें तो भी उसके द्वारा जीवहिंसा होती है । इसका कारण यह है कि फल-मूल भी जीव हैं और उन्हें काटकर भक्षण करनेपर भी जीवहिंसा रूपी पापसे मुक्त हुआ नहीं जा सकता । किन्तु शरणागत भक्त लोग शास्त्रोंकी विधिके अनुसार एकमात्र भगवान्के उद्देश्यसे भक्ति के साथ फल-मूल-जल, जो कुछ भी अर्पण करते हैं,

भगवान् उन वस्तुओंको आदरके साथ ग्रहण करते हैं और जब भक्त लोग उस निर्गुण भगवदुच्छिष्ट-को ग्रहण करते हैं, उससे उन्हें कोई पाप नहीं होता । श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं—

चारि वर्णाश्रमी यदि कृष्ण नाहि भजे ।
स्वकर्म करिते ओ से रौरवे पड़ि मजे ॥

बिना भगवद्भजनके अपने-अपने वर्ण और आश्रमोचित कर्म करने पर भी पाप भोग करना पड़ता है । क्योंकि भगवद्भक्तिको छोड़कर सभी कर्म ही भोगमूलक हैं; इसलिये पापयुक्त हैं । एकमात्र भगवद्सेवामूलक कार्य ही सब प्रकारके पापोंसे रहित हैं । भगवान् कहते हैं—

“मन्निमित्तं कृतं पापमपि धर्माय कल्पते ।
मामनाहृत्य धर्मोऽपि पापो स्वान्मत्प्रभावतः ॥

(भक्तिसन्दर्भ धृत पाद्मवचन)

मेरे लिये किया हुआ पाप भी धर्म है और मुझे अनादर करके यदि धर्म भी किया जाय, तो वह भी मेरे प्रभावसे पाप बन जाता है, इस विषयको श्री-रामानुज सम्प्रदायके एक पूर्व महापुरुषके जीवन चरित्रसे प्रमाणित करेंगे । श्रील जीव गोस्वामीपादने श्रीमद्भागवतकी टीकामें इस प्रसङ्गका उल्लेख किया है ।

प्राचीनकालमें दक्षिणदेशमें तिरुमङ्गल नामक एक विष्णुभक्त थे । वे युवावस्थासे ही भगवान्की सेवा के उद्देश्यसे विभिन्न तीर्थोंमें भ्रमण करते थे । तीर्थ-यात्राके समय चार सिद्धपुरुषोंने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया । पहले शिष्यका नाम “तर्कचूडामणि”

दूसरे शिष्यका नाम “द्वार उन्मोचक”, तीसरे शिष्यका नाम “छायाग्रह” (अर्थात् जिस किसी छायाका स्पर्श कर उसकी गतिरोकने वाला) और

चौथे शिष्यका नाम "जलोपरिचर" (अर्थात् जलके ऊपर भी चलने वाला) था । इन चार शिष्योंके साथ तीर्थ भ्रमण करते-करते एकबार तिरुमङ्गइजी श्रीरङ्गनाथ मन्दिरके निकट उपस्थित हुए । उन्होंने जीर्णशीर्ण मन्दिरका दर्शन किया । उन्होंने देखा कि मन्दिरका प्राङ्गण अत्यन्त छोटा है और वह चमगीदड़ोंका निवासस्थान बन गया है । चारों ओर जङ्गलसे घिरा हुआ है । बाघ, सियार आदि हिंसक प्राणियोंके भयसे भीत सेवकगण केवल दिनके समय एकबार आकर श्रीरङ्गनाथजीका अर्चन कर चले जाते थे । यह जानकर तिरुमङ्गइ आलवारके हृदयमें युगपत् क्रोध और दुःखका संचार हुआ । वे सोचने लगे कि विषयी लोग तो ऊँची-ऊँची अट्टालिकाओंमें रहकर कामिनियोंके साथ नानाप्रकारकी क्रीड़ाओंमें मग्न रहते हैं और जो विश्वेश्वर, राजाजेश्वर और प्राणोंके भी ईश्वर हैं, उन्हें एक लुट्ट भग्नप्राय मन्दिरमें फँक रखा है । आज कृष्ण-संसारको असुर लोग लूट लूटकर खा रहे हैं । वे (तिरुमङ्गइजी) अर्थहीन थे । वे कुछ भी निश्चय नहीं कर पाये । अन्तमें जहाँ-जहाँ पर वे किसी धनी व्यक्तिका नाम सुनते थे, वहाँ-वहाँ अपने चारों शिष्योंके साथ भिक्षा के लिये जाने लगे । धन-दुर्मदान्ध व्यक्ति उन्हें धन प्रदान करनेसे तो दूर रहे, उल्टे वे तिरुमङ्गइजीको ही चोर-डाकू बतलाकर उनसे कहते थे कि "साधुओं को अर्थकी क्या आवश्यकता है ?" इस प्रकारके व्यक्तियों का प्रयोग कर उन्हें ताड़ना देने लगे । किन्तु तिरुमङ्गइजी अपने संकल्पसे किसी प्रकारसे भी विचलित नहीं हुए । उन्होंने देखा कि धनी व्यक्ति भगवानके अर्थका अपहरण कर भोग कर रहे हैं और अपनेको

धनवान समझ रहे हैं । उन्होंने यह संकल्प किया कि किसी भी प्रकारसे इन भगवद् वित्तापहारी तस्कर धनियोंसे भगवानके धनको छीनकर भगवानकी सेवामें लगाना चाहिये । तिरुमङ्गइजीने अपने शिष्यों की सहायतासे एक दस्यु-दल बनाया । उनके 'तर्क-चूड़ामणि' नामक शिष्य विषयी व्यक्तियोंको तर्क-जालमें फँसा देते थे, द्वारउन्मोचक नामक शिष्य घनागारके द्वार खोल देते थे, 'छायाग्रह' घनागारके रक्तकोंकी गतिशक्तिको रोक देते थे और 'जलोपरिचर' परिखा (खाई) द्वारा वेष्टित कोपागार में प्रवेश कर समस्त धनराशिको लूटकर ले आते थे ।

इसके पश्चात् प्रचुर अर्थ संप्रदीत होने पर तिरुमङ्गइजीने नाना देशोंसे हजारों शिल्पियोंको लाकर सप्त-प्राकारविशिष्ट परम रमणीय भगवानके श्री-मन्दिरका निर्माण किया । किन्तु तिरुमङ्गइजी दिनके अन्तमें स्वयं अपने हाथसे रसोई कर विष्णु निवेदित अन्न दिनमें एकबार मात्र ग्रहण करते थे । वे सम्पूर्ण रूपसे भगवानके शरणागत होकर सर्वेन्द्रियद्वारा भगवानकी सेवामें नियुक्त रहते थे और शिष्योंको भी भगवानकी सेवामें नियुक्त रखते थे । वे एक उद्धरेता गोस्वामी थे ।

एक नैतिक या स्मार्त्त व्यक्तिके विचारसे तिरुमङ्गइ आलवारका यह कार्य दस्युका कार्य था । किन्तु तिरुमङ्गइजीने स्वयं दस्युदलके नेता होकर शिष्यगणोंकी सहायतासे भगवानकी सेवाके लिये यह कार्य किया था । इस कार्यमें उनको लेशमात्र भी भोग या प्रतिष्ठाकी आशा नहीं थी । उन्होंने देखा कि सभी धन श्रीपति नारायणका ही है । केवल मोहके कारण धनी व्यक्ति भगवानकी सेवाके अर्थ

द्वारा अपनी-अपनी भोगतृप्ति करते हैं। अतएव वे ही वास्तवमें दस्यु हैं। इसलिये जब इन सब दस्युओं से सीधी बातोंमें घन चापिस नहीं मिलता, तब भगवानकी सेवाके लिये जिस किसी भी उपायसे उसे प्रहण करना ही उचित समझा। तिरुमङ्गलजी का यह दस्युचित कार्य भक्तोंके विचारसे भगवद्-भक्ति और तृणादपि सुनीचता है। हनुमानजीका लङ्का दहन ही भगवद्भक्ति और गुरुसेवा है और वही तृणादपि सुनीचता है, क्योंकि इन सब कार्योंमें उनका अपने लिये भुक्ति-भुक्तिका गन्ध तक नहीं था। संसारमें भुक्ति-मुक्ति मूलक जो भी कार्य हैं, भले ही संसारी व्यक्तियोंकी दृष्टिमें सत्कार्य हैं,

तथापि वे सभी असत्कार्य ही हैं। क्योंकि उन सब कार्योंका उद्देश्य सद्वस्तु भगवानका प्रीतिविधान नहीं होता। अतएव श्रीमद्भागवतमें यह उपदेश दिया गया है—

नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ।

न तीर्थपादसेवायं जीवन्नपि मृतो हि सः ॥

(भागवत ३।२३।५२)

अर्थात् जिन व्यक्तियोंके कर्म-धर्मके उद्देश्यसे या भगवद्भक्तिके उद्देश्यसे अथवा तीर्थोंकी सेवाके लिये नहीं किये जाते, ऐसे कर्मकारी व्यक्ति जीवित अवस्थामें ही मृततुल्य हैं।

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रील सरस्वती ठाकुर

प्रश्नोत्तर

[गताङ्कसे आगे]

(भगवद् रसतत्त्व)

१—श्रीकृष्ण अखिलरसामृतसिन्धु और अस-
मोर्द्ध्वरसस्वरूप क्यों हैं ?

“केवल श्रीकृष्णस्वरूप ही इस सर्वोच्च रस (पारकीय रस) के एकमात्र विषय हैं। निरपेक्ष होकर और मतवादजनित भ्रममें दूर रहकर विचार करने पर यह जाना जाता है कि श्रीकृष्णस्वरूप ही भगवानके सभी स्वरूपोंमें सर्वश्रेष्ठ और निर्मल हैं। ॐॐॐ जिस प्रकार अन्यान्य स्वरूप चिन्मय, ऊदा-
तीत, पूर्णगुण सम्पन्न और मायाविजयी हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण स्वरूप भी अप्राकृत गुणोंसे युक्त हैं। कृष्ण स्वरूपकी यही विशेषता है कि वे इस प्रपञ्चमें

अपनी पूर्ण चित्लीलाको प्रकाशित कर स्वीय चिच्छक्ति के द्वारा उन्हें जड़ेंद्रियप्राण भी बना देते हैं। वे प्रपञ्चमें अवतीर्ण होकर प्रापञ्चिकवत् व्यवहार करने पर भी सर्वेश्वर्यसम्पन्न हैं। बालकोंके साथ प्राणप्रिय बालक की तरह, पिता-माता और गुरुजनोंके निकट आश्रित शिशुकी तरह एवं मधुर रसाश्रित भक्तोंके साथ प्राणनाथकी तरह व्यवहार करने पर भी उन्होंने अपनी ईशिताकी पराकाष्ठा दिखलाई है। मनुष्योंके निकट नरलीला प्रकाश करने पर भी सभी अधि-
कारिक देवताओंके निकट सर्वेश्वरकी तरह व्यवहार कर बड़े-बड़े तथाकथित परिद्धतांको भी आश्चर्यमें

हाल दिया है। कृष्ण गोपभावसे अपनी जगदुन्मा-
दिनी लीलाओंको यदि कृपापूर्वक प्रकाशित नहीं
करते, तो परमेश्वर (भगवान) को मधुर रसके
विषयके रूपमें कौन अनुभव कर सकता था ?”

—(श्रीम० शि० ११वाँ अ०)

२—श्रीकृष्णकी पारकीयता क्या घृणार्हा
(घृणा करने योग्य) नहीं है ?

“श्रीकृष्ण जहाँ नायक हैं, वहाँ पारकीयता
कदापि घृणास्पद नहीं है। साधारण लुद्र जीव जहाँ
नायक-पदवी धारण करते हैं, वहाँ धर्माधर्म विचार
करना पड़ता है।”

—जै. घ. ३१वाँ अ.

३—श्रीराधाकृष्ण क्या तत्त्व हैं ?

“श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी शिक्षानुसार मधुर रस ही
भक्तोंका चपास्य रस है। इस रसमें श्रीमती राधिका
जीके अनुगत न होनेसे रसास्वादन नहीं हो सकता।
सच्चिदानन्द तत्त्व ही परब्रह्म हैं। श्रीकृष्ण सच्चिद्
रूप हैं और श्रीमती राधा आनन्दरूपिणी हैं।
राधाकृष्ण एक ही तत्त्व हैं। रस विस्तृति (आस्वादन)
के लिये दो रूपोंमें प्रकटित हुए हैं।”

...चै. शि. ४।५

४—रस-समुद्र स्वरूप श्रीकृष्णके उद्दीपन-विभाव
किस प्रकार होते हैं ?

“विजयकुमार जल्दी ही प्रसाद पाकर समुद्र
तीरपर भ्रमण करते-करते काशीमिश्र भवनमें पहुँचे।

समुद्रकी तरंगों और लहरियोंको देखकर उनके हृदय
में रस-समुद्रके भाव उदित होने लगे। वे सोचने
लगे—“आहा, यही समुद्र ही मेरे भावको उदय
करा रहा है। जड़ वस्तु होने पर भी यह मेरे अतिगुप्त
चिदभावका उद्घाटन करा रहा है। प्रभु मुझसे
जिस रस-समुद्रकी बात कहते हैं, वह ऐसा ही होता
है। मेरी जड़देह और लिङ्गदेह छूटने पर मैं रस-
समुद्रके तीरपर अपने मञ्जरी-स्वरूपसे अवस्थित
होकर रसास्वादन करूँगा। नवाम्बुदवर्ण कृष्ण ही
मेरे प्राणनाथ हैं। उनके पार्श्वस्थिता श्रीवृषभानु-
नन्दिनी ही मेरी ईश्वरी अर्थात् जीवितेश्वरी हैं।
राधा-कृष्णका प्रणयविकार ही यह समुद्र है।
रसभाव-समूह ही यह उष्मिमाला (तरंगों) हैं।
जब जो भाव उठता है, वही विचित्र लहरी होकर
मुझ तटस्थ सखीको प्रेम रसमें डुबा रही है। रस-
समुद्र कृष्ण हैं, इसलिये समुद्र भी उनकी ही तरह
श्यामवर्णका है और उसमें राधा ही प्रेमतरंग हैं,
इसलिये इन तरंगोंका रंग गौरवर्ण है। बड़ी-बड़ी
तरंगें सखियाँ हैं, लुद्र-लुद्र लहरियाँ सखियोंकी
परिचारिका हैं। उसमें से मैं एक दूर तटमें निक्षिप्ता
अगु-परिचारिका विशेष हूँ।” ऐसी भावना करते-
करते विजयकुमार मुग्ध हो गये। थोड़ी देर बाद
चेतना लाभ कर धीरे-धीरे श्रीगुरुचरणोंमें उपस्थित
होकर दण्डवत् प्रणाम कर दीनभावसे बैठ गये।”

—जै. घ. ३४वाँ अ.

— जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

सन्दर्भ-सार

(कृष्णसन्दर्भ-२)

श्रीकृष्ण यदि स्वयं भगवान हैं तो इस प्रपञ्चमें क्यों अवतीर्ण हुए ? इसका उत्तर यही है कि अन्यान्य अवतारोंकी तरह वे पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये अवतीर्ण नहीं हुए; किन्तु अपनी निरपेक्ष भगवत्ताको रखते हुए अपने परिजनोंकी आनन्द-विशेषात्मक चमत्कारिताको दिखलानेके लिये जन्मादि लीलाओंके द्वारा अनिर्वचनीय माधुर्यका पोषण करते हुए कभी-कभी जगत-दृष्टिके गोचरीभूत होते हैं। प्रपञ्चातीत भगवन् धामसे भगवत्स्वरूपका प्राकृत जगतमें अवतरण ही 'अवतार' कहा जाता है। अवतार शब्दका अर्थ केवल अंश ही नहीं है।

श्रीकृष्णकी तरह श्रीबलराम भी पुरुषके अंश विशेष नहीं हैं। अंशावतारगण अंशीकी तरह सामर्थ्ययुक्त हैं। किन्तु विभिन्नांश जीवोंका ऐसा नहीं होता। वराहपुराणमें कहते हैं—

स्वांशश्चाथ विभिन्नांश इति द्वेषांश इष्यते ।
अंशिनो यत् सामर्थ्यं यत् स्वरूपं यथास्थितिः ।
तवेव नानुमात्रोऽपि भेदः स्वांशांशिनोः क्वचित् ।
विभिन्नांशोऽल्पशक्तिः स्यात् किञ्चित् सामर्थ्यमात्रयुक् ॥

अंशीकी तरह अंशका सामर्थ्य अंश और अंशीकी ऐक्यताके कारण है। जैसे एक अक्षय सरोवरसे उत्पन्न सभी प्रवाहोंकी अक्षयता सरोवरकी अक्षयताके कारण ही स्वीकार किया जायगा, वैसे ही यहाँ भी अंशीके सामर्थ्यादि और अंशका सामर्थ्य

एकजातीय समझना चाहिये। यदि दोनोंका एक ही सामर्थ्य हो, तो कौन अंश हैं और कौन अंशी हैं, यह जाना नहीं जा सकता। यदि ऐसा हो, तो अंशसे अंशीका आविर्भाव हो सकता था। अवतार और अवतारीका तारतम्य निम्नलिखित श्लोकमें दिखलाया गया है —

आसीनमुख्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठधिष्यम् ।
विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽवपृच्छन् ॥
स्वमेवधिष्यं बहुमानयन्तं यद्वासुदेवाभिधमामनन्ति ॥

किसी समय सनतकुमारादि मुनियोंने परमपुरुषका तत्त्व जाननेके लिये पाताललोकमें स्थित अप्रतिहत-ज्ञान आद्य भगवान श्रीसंकर्षणदेवसे प्रश्न किया था। उस समयमें वे अपने आश्रयतत्त्व श्रीवासुदेवका ध्यानमें अनुभव कर सर्वोत्कृष्ट ज्ञानमें उनकी पूजा कर रहे थे। यहाँ संकर्षणकी अपेक्षा वासुदेवकी श्रेष्ठता जाना जाता है।

श्रीमन्मध्वाचार्यजी ने 'च' स्थानमें 'स्व' शब्द पाठ कर स्वांश शब्दके द्वारा स्वांश मत्स्यादि अवतारोंसे विभिन्नांश जीवोंका पार्थक्य दिखलाया है। इनके कहनेका तात्पर्य यह है कि श्रीकृष्ण अखण्ड तेजोराशि सदृश हैं। मत्स्यादि स्वांश तेजोराशिके अंश तुल्य हैं और जीवगण खद्योत तुल्य हैं। जैसे अखण्ड तेजके अंश होने पर भी खद्योत सूर्यके समान नहीं हैं, वैसे ही विभिन्नांश जीव स्वांशके समान नहीं हैं।

सूर्यकी तरह स्वांशकी प्रचुर शक्ति है । वे जगतको प्रकाश कर सकते हैं । परन्तु विभिन्नांश जीवगण अपने आपको भी प्रकाश करनेमें असमर्थ हैं ।

“कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्”—यह वाक्य ही श्रीमद्भागवतका मुख्यतम वाक्य है । अर्थात् श्रीकृष्ण ही सर्वांशी मूल अवतारी स्वयं भगवान् हैं । इस श्लोकाद्ध के द्वारा सभी अवतारोंको दो भागोंमें विभक्त किया गया है—श्रीकृष्णको छोड़कर दूसरे सभी अवतारोंको पुरुषके अंशरूपमें निर्देश किया गया है और परिभाषारूप प्रतिज्ञावाक्यके द्वारा श्रीकृष्णको स्वतन्त्र बतला कर उन्हें ही श्रीमद्भागवतके मुख्यतम प्रतिपाद्यके रूपमें निर्णय किया गया है ।

अनियमको नियमकारिणी ही ‘परिभाषा’ है । अर्थात् जो वाक्य अनियमितरूपसे वर्णित सभी विषयोंको किसी नियमके द्वारा शृङ्खलाबद्ध करता है, वही परिभाषा है । शास्त्रोंमें परिभाषाका उल्लेख केवल एकबार ही किया जाता है, बारम्बार किया नहीं जाता । एकबार उल्लेख करनेसे ही उसके द्वारा कोटि (अगणित) वाक्योंका शासन होता है । अतएव ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयं’ यह वाक्य गुणवाद नहीं है । पूर्व मोमांसांमें कहे गये अर्थवादका प्रकार-भेद ही ‘गुणवाद’ है ।

प्रमाणान्तरके साथ विरोध रहने पर अर्थवाद ही गुणवाद कहलाता है । जैसे ‘आदित्य-यूप’ । यह वाक्य प्रत्यक्ष प्रमाणके द्वारा समझा नहीं जा सकता । क्योंकि आदित्य (सूर्य) और यूपका अभेदत्व प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता, क्योंकि दोनों ही भिन्न

भिन्न वस्तु हैं । इसलिये यहाँ पर अर्थवाद स्वीकार पूर्वक लक्षणावृत्तिके द्वारा अर्थसङ्गति कर सूर्यकी तरह उज्ज्वल रूपगुणयुक्त यूपको ही समझना चाहिये । यहाँ पर गुणवादमें मुख्याश्रय बाधित होता है और गौणार्थ प्रतीत होता है । यहाँ पर श्रीकृष्ण का स्वयं-भगवत्ताद्योतक वाक्य गुणवाद नहीं है । यदि यह परिभाषा वाक्य नहीं होता, तो अन्यवाक्यके विरोधमें इसका गौणार्थ अवलम्बन कर अर्थ-संगति करना पड़ता । इससे उसे गुणवाद माना जाता । किन्तु यह परिभाषा वाक्य होनेके कारण सभी विरोधी वाक्योंको इसके अनुगत रूपमें देखना होगा—अर्थात् ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयं’ इस वाक्यके मुख्यार्थकी सर्वत्र रक्षा करते हुए, प्रयोजन होने पर इसके विरोधी वाक्योंका गौणार्थ करना होगा ।

यदि कोई कहे कि श्रीमद्भागवतका यह परिभाषा वाक्य केवल श्रीमद्भागवतीय विरोधी वाक्योंका शासन कर सकता है, अन्य पुराणोक्त श्रीकृष्णकी स्वयं-भगवत्ता विरोधी वाक्य इस वाक्यके द्वारा कैसे शासित होंगे ?—किन्तु ऐसा कहा नहीं जा सकता । क्योंकि श्रीमद्भागवत परमार्थ-निर्णायक शास्त्र है और यह परिभाषा तात्पर्य निर्णयके लिये एकमात्र सहाय है ।

श्रीमद्भागवतका सर्वश्रेष्ठत्व और समस्त शास्त्रोंके ऊपर आधिपत्य है । अतएव विद्वान व्यक्ति शास्त्रान्तरके वचनको भी ‘कृष्णस्तु भगवान् स्वयं’ इस वाक्यके अधीन ही देखते हैं । परिभाषा वाक्य ही शास्त्रोंमें राजा है और अन्य सभी वाक्य उसके अनुचरस्थानीय हैं । श्रीमद्भागवतके कई वाक्योंमें श्रीकृष्णका अंशत्व प्रतीत होता है—

१. 'अंशेनावतीर्णस्य विष्णोः' (१०।१।२) इस वाक्य का यथाश्रुत अर्थ—श्रीकृष्ण विष्णुके अंश हैं। किन्तु वास्तविक अर्थ—'अंशेन बलदेवेन सह' (अर्थात् अपने अंश बलदेवके साथ कृष्ण अवतीर्ण) है। यहाँ सहार्थमें तृतीय विभक्ति प्रयोग हुआ है।

२. बभौ भूः पक्वशस्याया कलाभ्यां नितरां हरः (१०।२०।४८)। यथाश्रुत अर्थ—हरिके अंश श्रीराम-कृष्णके द्वारा पृथ्वी अत्यन्त शोभा पा रही थी। वास्तविक अर्थ—हरिकी कला (विभूतिरूपा) भू (पृथ्वी) आभ्यां (रामकृष्णाभ्यां) अर्थात् हरिकी विभूतिरूपा पृथ्वी रामकृष्णके द्वारा अतिशय शोभा पा रही थी।

३. विष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमान्

अंशेन साक्षाद्भगवान् भवाय नः। (१०।२।४१)

यथाश्रुत अर्थ—देवगण देवकीसे कह रहे हैं—हे माता ! साक्षात् भगवान् परमपुरुष हमारी श्रीपृथ्वीके लिये अंशके द्वारा आपके गर्भमें आविर्भूत हुए हैं। वास्तविक अर्थ—हमारे मङ्गलार्थ जो मत्स्यादि अंशरूपसे पहले आविर्भूत हो चुके हैं, वे साक्षात् भगवान् स्वयं ही आपके गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं।

४. जगन्मंगलमच्युतांशं (१०।२।१६)। यथाश्रुत अर्थ—श्रीकृष्ण अच्युतके अंश हैं। वास्तविक अर्थ—सभी अच्युत अंश जिनमें हैं अर्थात् कृष्णके अवतीर्ण होने पर सभी अंश उनमें अवस्थान करते हैं, वही सर्वांशपूर्ण कृष्ण हैं।

५. एतौ भगवतः साक्षाद्द्वारे नारायणस्य च।

अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेदमनि ॥

(१०।४।२३)

यथाश्रुत अर्थ—ये (राम कृष्ण) साक्षात् नारायण हरिके अंशसे वसुदेवके गृहमें अवतीर्ण हुए हैं। यह वाक्य रङ्गमंचमें बैठे हुए दर्शक लोगोंका वाक्य है—सुविज्ञ व्यक्तिका वाक्य नहीं है। तथापि इसका सरस्वती-प्रतिपादित अर्थ (सहार्थमें तृतीयके द्वारा) "सर्वांश सह अवतीर्ण" (अर्थात् सभी अंशोंके साथ अवतीर्ण) है।

६. ताविमौ वं भगवता हरेरंशाविहागतौ।

नारव्याय च भुतः कृष्णः यदुकुरुद्वहो ॥

(४।१।५७)

यथाश्रुत अर्थ—पृथ्वीके भारहरणार्थ श्रीहरिके दोतों अंश यदुकुलजात श्रीकृष्ण और कुरुकुलजात अर्जुन यहाँ आये हुए हैं। वास्तविक अर्थ—'आगतौ' पदका कर्त्तृ वाच्यमें क्त प्रत्यय एवं 'कृष्णौ' पदका कर्मकारकमें द्वितीया विभक्ति हुआ है। इसलिये नानावतारोंके बीज स्वरूप हरिके नर-नारायणख्य दोतों अंश श्रीकृष्णार्जुनमें प्रवेश किये हैं। श्रीनर-नारायण 'आगत' कियेके कर्त्तृकारक एवं श्रीकृष्णार्जुन कर्मकारक हैं। कैसे श्रीकृष्णार्जुन ? पृथ्वीके भारहरण करनेके लिये एवं भक्तोंको सुख देनेवाली नानाप्रकारकी लीलामें करनेके लिये जो अवतीर्ण हुए हैं। यदुकुरुद्वह = यदु और कुरुवंशमें अवतीर्ण। 'अर्जुने तु नरावेशः कृष्णो नारायणः स्वयम्—इस आगमवाक्यमें अर्जुनमें नर नामक ऋषिके प्रवेश करनेके कारण 'नरावेश' शब्दका प्रयोग हुआ है। ब्रह्माजीके स्तवमें 'नारायणस्त्वं नहि सर्वदेहिनां' श्लोकमें श्रीकृष्ण ही अनन्यसिद्ध नारायण हैं, यह प्रतिपादित होता है। दशम स्कन्धके रुक्मिणी परिहास-प्रसंगमें—

ययोरेव समं वीर्यं जन्मश्रव्याकृतिर्भवः ।

तयोविवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयो क्वचित् ॥

जिन दो व्यक्तियोंका समान प्रभाव, समान कुलमें जन्म, समान आकृति और समान अभ्युदय (वयस) है उनमें परस्पर विवाह और मैत्री सुखका कारण है । उत्तमाधमका विवाह और मैत्री सुखका कारण नहीं हो सकता—इस श्रीकृष्णोक्तिके अनुसार नर ऋषिके आवेशके साथ स्वयं नारायण श्रीकृष्णका सख्य नहीं हो सकता । क्योंकि आवेश अवतार आविष्ट जीव विशेष हैं । श्रीअर्जुन यदि ऐसे होते, तो स्वयं नारायण श्रीकृष्णके सखा नहीं हो सकते ।

विष्णु-धर्ममें श्रीकृष्ण कहते हैं—

यस्त्वां वेत्ति स मां वेत्ति यस्त्वामनु स मामनु ।

अभेदेनात्मनो वेद्यि त्वामहं पाण्डुनन्दन ॥

हे पाण्डुपुत्र, जो व्यक्ति तुम्हें जानता है, वह मुझे जानता है । जो तुम्हारे अनुगत है, वह मेरा भी अनुगत है; मैं तुम्हें अपनेसे अभिन्न समझता हूँ । इस वाक्यके द्वारा श्रीनारायण-सखा नरऋषिकी अपेक्षा अर्जुनका पूर्णत्व प्रतीत होता है । अतएव अर्जुनमें नरका 'आवेश' न होकर 'प्रवेश' होना ही उचित है ।

—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिभूदेव औंती महाराज

जसोदाका हठ

बाँधों आजु, कौन तोहि छोरे ।

बहुत लँगरई कीन्ही मोसों, मुज गहि रजु ऊरवल सों जोरै ॥

जननी अति रिस जानि बाँधायौ, निरखि बदन, लोचन, जल डोरै ।

यह सुनि ब्रज-जुवती सब धाईं, कहति कान्ह अब क्यों नहि छोरे ॥

ऊखल सों गहि बाँधि जसोदा, मारन कौं माँटी कर तोरे ।

माँटी देखि ग्वाल पछितानी, बिल भई जहँ - तहँ मुख मोरै ॥

सुनहु महरि ! ऐसी न वृष्णिपे, सुत बाँधति माखन - दधि थोरै ।

सूर स्याम कौं बहुत सतायौ, चूक परी हम तैं यह भोरै ॥

श्रीमद्भागवतमें दास्यभाव

(वर्ष ११, संख्या २ पृष्ठ ४२ से आगे)

इस कोलाहलपूर्ण संसारमें अशान्तिके वातावरणोंसे घिरा, अहंता ममताकी चादर ओढ़े, अनैतिकता, असदाचरणोंको साथी बनाकर मानव भटक रहा है। भौतिकवाद व चमकते आपातरमणीय भोग विलासोंसे अंधा बन रहा है। ऐसे समयमें उसके लिये एक ही सहारा है, एक ही जीवनका सुन्दर पाथेय है—भगवान्‌के चरित्रोंका निरन्तर गुणगान और उनके अनन्य हरिदासोंकी चर्चा। वैष्णवजन इसीमें आनन्दका अनुभव करते हैं, सुख शान्ति प्राप्त करते हैं। उन्हें संसारकी कटु विषमरी हिंसक जन्तुओंसे परिपूर्ण सरिता अच्छी नहीं लगती, जिसमें अशान्ति, कलह, रागद्वेष, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्यके जीव-जन्तु भरे पड़े हैं जो निशिदिन जीवको काटते रहते हैं। उन्हें तो श्रीकृष्णकी चरण-मन्दाकिनीमें अवगाहन करना ही रुचता है। वह तो उसीकी माधुरीमें मस्त रहना अपना सौभाग्य मानते हैं। सतत् श्रीकृष्णके चरित्रों का और हरिदासोंकी जीवनचर्याका अमृत पान करनेके ही इच्छुक बने रहते हैं।

अतः यहाँ कृष्णावतारके एक दास्य भक्त अक्रूर की चर्चाकी जा रही है, जो सभीके लिये सुखद होगी। भागवत महोदधिमें अक्रूरका चरित्र भी बड़ा ही उपादेय है और उनकी दास्य भक्ति भी पठनीय और मननीय है।

ब्रजभूमिकी सुखद ! गोद जो लीला-पुरुषोत्तम

श्रीकृष्णकी क्रीडा-स्थली है, वहाँ ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्णको अनेक प्रकारके कष्ट देने और उनका वध करनेके लिये जन्मकालसे ही मथुरापुरीका तत्कालीन राजा कंस अपने अनेक साथियोंको (राक्षसोंको) भेजता रहा, परन्तु कंसके वे वीर कंसके पास बापस समाचार देनेको भी न लौट सके। सभी मृत्युके घाट उतर गये, सभीको परम कारुणिक श्रीहरिने सद्गति प्रदान कर दी। अतः अन्तमें हताश होकर कंसने यह निश्चय किया कि राम, श्यामको उनकी गोप-मण्डलीके साथ यहाँ बुला लिया जाय। फिर वहाँ उनका मदीन्मत्त कुवलयपीड हाथीके द्वारा, चारूर मुष्टिक आदि बड़े-बड़े मल्लोंके द्वारा या अन्य किसी प्रकारसे वध करा दिया जाय। किन्तु श्रीकृष्ण को लानेका कार्य कौन करें—इसके लिये बहुत सोच विचार करनेके बाद कंसने निर्णय किया कि वृष्णि वंशके अक्रूर इस कार्यको करनेमें समर्थ हैं, क्योंकि वे श्रीकृष्णके सम्बन्धी हैं; भोज वृष्णिकुलमें श्रेष्ठ भी हैं। कंसने उन्हें बुलाया बड़े ही प्रेमका व्यवहार करते हुए उनका हाथ पकड़ कर एकान्तमें ले जाकर पहले तो अपनी वीरता अपने साथियोंकी वीरताका परिचय दिया; फिर उसने कहा—“मैं एक धनुर्यज्ञका महोत्सव कर रहा हूँ, उसके दर्शनके लिये राम श्यामको भी बुलाया जाय तो उत्तम होगा और उन्हें लानेके लिये मैंने आपको चुना है, क्योंकि आप सभी प्रकारसे योग्य हैं। अक्रूर कंसकी चातुरीको

पहिचान गये । एकबार तो वे सोचने लगे, विचार-महोदधिमें लुबकियाँ भी लेने लगे, पर अन्तमें उन्हें भगवद्दर्शनकी लालसाने भकभोर दिया । वह भगवान् के अप्रमेय पौरुषको मान कर तथा भूभारहरणकी क्षमता देखकर अपने सौभाग्य सूर्यके उदयके लिये पीछे नहीं हटे, कंसकी आज्ञाको स्वीकार कर लिया । तब कंसने रथ एवं प्रस्थानके योग्य सारा सामान एकत्रित करा दिया ।

अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ।
उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥
गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ।
भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥
किं मयाऽऽचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ।
किं वाथाप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥

(भा० १०।३८।१,२,३)

अक्रूरने उस रात्रिको मथुरामें ही निवास किया और प्रातः काल होते रथमें बैठकर नन्दरायजीके गोकुलको प्रस्थान किया । कमलनयन भगवानकी परमभक्ति होनेसे वे महाभाग मार्गमें चलते हुए मनमें ऐसा विचार करने लगे—मैंने कौनसा ऐसा कल्याण का काम किया वा कौनसा परम तप किया अथवा कौनसे सत्पात्र को दान देकर सन्तुष्ट किया जो आज मुझे भगवान्के दर्शन होंगे । यह मैं जानता हूँ कि विपयासक्त मुझे भगवानका दर्शन होना बड़ा दुर्लभ है, जैसे एक शूद्रके लिये वेदका उच्चारण । परन्तु नहीं, मुझ नीचको भी भगवद्दर्शन हो सकते हैं । जैसे जलमें बहता हुआ तृण कभी तीर पर भी पहुँच जाता है, वैसे ही कर्मवशः कालके द्वारा ले

जाये हुए जीवोंमें से भी कोई भवसागरको पार कर जाता है । अवश्य ही आज मेरे सब अशुभ नष्ट हो गये । आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो योगेश्वरोंके ध्यान करने योग्य भगवान्के चरणकमलोंमें मैं नमस्कार करूँगा । आज कंसने मुझपर बड़ी कृपा की जो अवतारधारी भगवान् श्रीहरिके चरण कमलोंके मैं दर्शन करूँगा, जिनके नखमण्डलकी काण्ठिसे अम्बरीष आदि भक्त दुरत्यय संसारसे तर गये ।

यर्दचितं ब्रह्मभवाविभि कुरैः
श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्वतैः ।
गोचारणायानुचरैश्चरद्बने
यद् गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥
द्रक्ष्यामि तूतं सुकपोलनासिकं
स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ।
मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं
प्रदक्षिणं मे प्रचरन्ति वै मृगाः ॥
अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो
भारावताराय भुवो निजच्छ्रया ।
लावप्यधाम्नो भवितोपलम्भनं
मह्यं न न स्यात् फलमञ्जसा दृशः ॥

(भा० १०।३८।८,९,१०)

जिन भगवान्के चरणों कमलोंकी ब्रह्मा, महादेव आदि देवता-देवी, लक्ष्मी भक्तों सहित उपासना करती है, मुनि जोग जिनका पूजन करते हैं, जो परम ऐश्वर्य, परम सौभाग्य और परम पुरुषार्थ रूप हैं, फिर भी कृपालुताके आधीन होकर अपने अनुचरों-गोपों के साथ गार्थोंको चरानेके लिये वनमें विचरते हैं, जो प्रेमके अतिरिक्त किसी प्रकारसे सुलभ नहीं हैं,

गोपियोंकी स्तनोंकी केसरसे रञ्जित है, आज अवश्य ही मुझे उन भगवानके मुखारविन्दका दर्शन होगा; क्योंकि हरिण मेरे दाहिने ओर आ रहे हैं। वह मुख कैसा है जिसमें सुन्दर नासिका और सुन्दर कपोल शोभित हो रहे हैं, मंदहासयुक्त जिनका निरीक्षण है, जिसमें कमलके अरुण नेत्र हैं, घुंघराले बालोंसे जो आच्छादित हो रहा है। अपनी इच्छासे भूमिका भार उतारनेके लिये जिन्होंने मनुष्य देह धारण किया है, ऐसे लावण्यके धाम प्रभुका मुझे दर्शन होगा। दर्शन होने पर अनायास ही मेरे नेत्र सफल हो जायेंगे—

इस प्रकार अनेक विचार करते हुए आगे बढ़ते रहें। वे फिर सोचने लगे।

अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः
शिरस्यधारस्यग्निहस्तपङ्कजम् ।
दत्तामयं कालभुजंगरहसा
प्रोद्वेजितानां शरणांघ्रिणां नृणाम् ॥
समर्हणं यत्र निधाय कौशिक,
स्तथा बलिश्चाप जगत्त्रयेन्द्रताम् ।
पद्मा विहारे व्रजयोवितां श्रमं,
स्पर्शनं सौगन्धिकगन्धपानुश्च ॥

(भा० १०।३८।१६, १७)

मैं जब श्रीकृष्णके चरणमूलमें पहुँगा, उस समय क्या श्रीकृष्णचन्द्र अपना हस्तकमल जो कालरूप। सर्पके वेगसे डरे हुए व शरणकी इच्छा करने वाले मनुष्योंको अभय देने वाला है—मेरे शिर पर धरेंगे? इन्द्र और बलि जिस हस्त कमलका पूजन कर त्रिलोकीके स्वामी हुए और सौगन्धिक नामक कमलके

समान सुगन्धित जिस हस्तकमलने रासक्रीडामें अपने स्पर्शसे व्रजाङ्गनाओंके श्रमको दूर दिया।

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलि,
मामीक्षिता सस्मितमाद्रंयादृशा ।
सपद्यपध्वस्तसमस्त किल्बिषो,
बोढा मुवं वीतविशङ्क ऊजिताम् ॥
(भा. १०।३८।१६)

अहा ! जब मैं सावधान हो हाथ जोड़कर उनके चरणोंके समीप प्राप्त होऊँगा तब श्रीकृष्ण हँसकर कृपामृतसे भरी दृष्टिसे मेरी ओर देखेंगे। तो वसी क्षण मेरे सारे पाप नष्ट हो जायेंगे, मैं परमानन्दको प्राप्त करूँगा।

इस प्रकार मार्गमें कृष्णका चिन्तन करते हुए अक्रूर अपने रथसे सूर्यके अस्त होते-होते गोकुल पहुँचे।

पदानि तस्यालिललोकपाल-
किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षितिकीतुकानि,
विलक्षितान्यब्जयवाङ्कुशाद्यः ॥
तद्दर्शनाह्लादविवृद्ध संश्रमः,
प्रेम्णोर्ध्वरोमाश्रुकलाकुलेक्षणः ।
रथादवस्कन्ध स तेष्वचेष्टत,
प्रभोरमूव्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति ॥
(भा. १०।३८।२५, २६)

सब लोकपाल जिनके चरणकमलोंकी रजको मुकुटसे धारण करते हैं, ऐसे भगवानके चरणोंके चिन्होंका अक्रूरने गोकुलमें दर्शन किया जो पृथ्वीके अलङ्कार रूप थे और जिनमें कमल, पद्म, अंकुश

आदिके चिह्न प्रतीत होते थे। उनके दर्शन होते ही, अक्रूरजी आनन्दमें छा गये, प्रेमके आवेगसे उनका रोम-रोम खिल उठा, नेत्रोंसे आंसुओंकी वर्षा होने लगी। उस समय वे तुरंत रथसे कूदकर उन श्रीकृष्ण-चरण चिह्नोंमें लोटने लगे और कहने लगे कि आज मेरा कैसा सौभाग्य है जो मुझे भगवानके चरणोंकी रज मिली है—

देहभृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम् ।

संदेशाद्यो हरेलिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः ॥

(भा. १०।३८।२७)

देह धारियोंका यही परम पुरुषार्थ है कि वे दंभ, भय और शोकका परित्याग कर भगवान्की श्रीमूर्ति, चिह्न, लीला, स्थान और गुणोंके दर्शन-श्रवण आदि का सेवन करें जिसे संदेशको ले जाते हुए अक्रूरने किया। दूसरे भी वैसे करें।

जिस समय ब्रजमें गो दोहन हो रहा था उस समय परात्पर प्रभुके दर्शन किये—

ददर्शं कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गती ।

पोतनीलाम्बरधरो शरदम्बुरुहेक्षणो ॥

किशोरो श्यामलश्वेतो श्रीनिकेतो बृहदभुजो ।

सुमुखो सुन्दरवरो बालद्विरदविक्रमो ॥

ध्वजवज्राङ्गुशाभोजश्रित्तिर्तरंगिभ्रंजम् ॥

शोभयन्ती महात्मानावनुकुशस्मितेक्षणो ॥

उदाररुचिरकीडो खन्विणो वनमालिनो ।

पुष्पगन्धानुलिप्ताङ्गी स्नाती विरजवाससो ॥

प्रधानपुरुषावाद्यौजगद्धेतु जगत्पती ।

भवतीणो जगत्पथे स्वांशेन बलकेशवो ॥

दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणो प्रनयास्वया ।

यथा मारकतः शूलो रोष्यश्च कनकाचितो ॥

रथात्तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ।

पपात चरणोपागते दण्डवद् रामकृष्णयोः ॥

(भा. १०।८।२८ से ३४)

अक्रूरजीने गायोंको दुहनेके लिये जाते हुए पीतपट व नील बन्ध धारण किये शरद कमलके समान नेत्रोंवाले राम और कृष्णका दर्शन किया। जिनकी किशोर अवस्था है, श्याम व श्वेत वर्ण है, जो लक्ष्मीके आश्रय हैं, जिनकी बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं, सुन्दर मुख है, बाल करिके समान जो पराक्रमी हैं, सर्वोत्तम सुन्दर हैं, ध्वज, वज्र, अंकुश व कमलके चिह्न वाले चरणोंसे जो पृथ्वीको शोभित कर रहे हैं, वे महात्मा कृपासे भरो दृष्टि व मन्द मुसकान बिखेर रहे हैं। उदार व सुन्दर जिनकी लीला है, वनमाला पहिरे हैं, रत्नोंके द्वार धारण किये हैं, पवित्र सुगन्धित चन्दनसे जो चर्चित हैं, स्नान किये हुए हैं, निर्मल वस्त्र पहिने हैं, जो प्रधान पुरुष आद्य पुरुष हैं, जगत्के कारण जगत्के पति भगवानने पृथ्वीके भार दूर करनेके लिये ही अवतार लिया है, अक्रूरने अपनी प्रभासे दिशाओंके अन्धकारको दूर करते हुए मरकत मणि व रूपेका पर्वत सुवर्ण व्याप्त होकर शोभा देता हो उस प्रकार राम कृष्णके दर्शन किये। भगवान्के दर्शन करते ही अक्रूर शीघ्र रथसे उतर पड़े और स्नेहसे विह्वल हो राम-कृष्णके चरणों में दण्डके समान गिर पड़े।

भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ।

पुलकाचितांग प्रीत्कण्ठ्यात् स्वास्थ्याने नाशकन् नृप ॥

(भा. १०।३८।३५)

भगवान्के दर्शनसे आँखोंमें आनन्दके अश्रु भर आये, शरीर पुलकित हो गया, और उत्कण्ठासे अपना नाम भी न ले सके।

भगवानने उन्हें अपने हाथोंसे उठाया और प्रेम से उनसे मिले। बलदेवजी उनके प्रेमसे द्रवित हो, उनके हाथको पकड़ कर अपने छोटे भाईके साथ घर को चले। घर पहुँच कर उनका स्वागत-सत्कारपूर्ण आतिथ्य किया। सुम्बादु भोजन कराया, भोजन कराने के अनन्तर महाभाग नन्दरायजीने सुन्दर आसन पर बैठा कर कंसकी निदर्यता, वहाँका रहन-सहन, निवास, आदिके सम्बन्धमें बहुतसे प्रश्न पूछे। अनन्तर श्रीकृष्णने कंसके द्वारा बन्धुओंके प्रति कैसा व्यवहार है और यह भी पूछा कि कंसकी क्या इच्छा है? यह भी प्रश्न किया। इस समय बन्धु बांधव कुशल से तो है। राजा कंसने हमारे पीछे ही माता-पिताको बड़ा कष्ट पहुँचाया है, कहते हुए दुःख व खेद प्रकट किया। अक्रूरने विस्तारसे कंसके जो आचरण अपनी प्रजाबान्धवोंके साथ हो रहे हैं, प्रकट किये। साथ ही जो सन्देश राजा कंसका लेकर वे आये हैं वह भी बताया। अक्रूरके वचन सुन पृथ्वीका भार उतारनेके लिये कटिबद्ध हो हँसकर रामकृष्णने राजा की आज्ञा अपने बाबा नन्दरायको निवेदन कर दी। नन्दरायने सभी वृद्ध गोपोंको बुलाकर कंसजी आज्ञा और अपनेका समाचार भी उन्हें दे दिया।

गोपान् समाविशद् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरतः ।

उपायनानि गृह्णीष्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ।

द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्वयान्ति जानपदाः किल ॥

एवमाघोषयत् क्षत्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ।

(मा. १०।३६।११, १२)

नन्दरायजीने गोपोंको आज्ञा दिया। सब लोग गोरस ले लें भेंट ले लो और छकड़े जोड़कर तैयार कर लें, कल हम मथुरापुरीको चलेंगे। राजा को गोरस देंगे। वहाँ एक बड़ा भारी उत्सव हो रहा है। देखो, उसे देखनेके लिये देशकी सारी प्रजा इकट्ठी हो रही है। हम लोग भी उसे देखेंगे।

गोपियोंने जब रामश्यामके प्रस्थानका समाचार सुना तो वे बड़ी व्यथित हुईं। उनके हृदय-तापसे मुखकी कान्ति मलिन हो गई, बल, बलय व जूड़े विकलताके कारण ढीले हो पड़े। वे सब

गति सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ।

शोकापहानि नर्माणि प्रोहामचरितानि च ॥

चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य भीता विरहकातराः ।

समेताः संघशः प्रोचुरश्रुमुह्योऽच्युताशयाः ॥

(मा. १०।३६.१७, १८)

भगवानकी सुन्दर गति, चेष्टा, स्नेहके साथ हास्य-युक्त होकर देखना, शोकके मिटाने वाले हास्य वचन, सर्वोत्तमचरित व विविध लीलाओंका चिन्तन करती विरहसे कातर भगवान्में चित्त लगा जूथके जूथ मिल मिलकर आँसू गिराने लगी और विधाताको कहने लगी—

अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया

संयोज्य मंत्र्या प्रणयेन देहितः ।

तांश्राकृतार्थान् विद्युनङ्क्षयपार्थकं

विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥

(मा. १०।३६।१९)

हे विधाता तेरेको कहीं भी दया नहीं है! अरे, जीवोंकी आपसमें मित्रता और प्रेम बाँधकर वह

पूर्ण सुख न भोग सके, उसके पहले ही वियोग कर देता है। इसीसे तेरी क्रीड़ा बालकके समान है। विधाता को भला बुरा कहनेके बाद वे अक्र रको रोष पूर्ण कटु उलाहने देने लगी—

क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्या स्म नश्चक्षुर्हि वसंतं हरसे बताजवत् ।
येनैकदेशोऽखिलसंगसौष्टवं त्वदीयमद्राक्षम वयं मधुद्विषः ॥

(भा. १०।३६।२१)

अरे विधाता ! तू बड़ा ही क्रूर है। तुम्हारे सिवा ऐसी क्रूरता कोई कर नहीं सकता, इसलिये अक्रूर नाम लेकर तू ही यहाँ आया है। अरे, अपनी ही दी हुई आँखें तू ही मूर्खके समान हमसे छीन रहा है। इसके द्वारा हम भगवान्के एक-एक अङ्गमें तेरी पूरी सृष्टिकी सुन्दरता निहारती रहती थीं। विधाता ! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिये।

न मन्दसूनुः क्षणभगसोहृदः समीक्षते नः स्वकृतानुरावत ।
विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥

(भा. १०।३६।२२)

अरे तेरे कारण श्रीकृष्ण भी हमारी ओर नहीं देखते। इन्होंने एक क्षणमें ही स्नेह छोड़ दिया है। इन्हें नया ही नया प्यारा लगता है। देख हम तो घर, स्वजन, पुत्र, पति सबको छोड़ कर इनकी दासी बनी और इन्हींके लिये हमारा हृदय शोकातुर है, परन्तु ये ऐसे निष्ठुर हैं कि हमारी ओर देखते तक नहीं।

आज मथुरापुरीकी स्त्रियोंका ही सौभाग्य है, जो श्रीकृष्ण और बलरामके मुखारविन्दको देखेंगी। फिर सभी एकत्रित होकर आपसमें कहने लगी—
जिनके बिना आधा निमिष भी हमें दुःखद प्रतीत

होता था, उनका यह लम्बा विरह कैसे सहन कर सकेंगी ? हम कैसे जी सकेंगी ?

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र,
लीलावलोकपरिरंभणरासगोष्ठीवम् ।
नीताःस्म नः क्षणमिदंक्षणवा विना तं,
गोव्यः कथंन्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥

(भा. १०।३६।२६)

रास क्रीड़ाकी सभामें स्नेह भरा जो भगवान्का सुन्दर मन्दहास्य, सुन्दर विचार, लीलापूर्वक दर्शन व आलिङ्गनकी प्राप्ति उससे हमने बहुत सी रातें क्षणके समान व्यतीत कीं वे हम भगवान्के बिना विरहके अपार दुःखको कैसे सहन कर सकेंगी ?

इस प्रकार गोपियाँ अनेक प्रकारकी दुःखभरी बातें करती रहीं। सारी रात उनकी इसी प्रकार बीत गई।

दूसरे दिन सूर्यके उदय होनेपर अक्रूरने अपना रथ तैयार किया और गोपोंने भी अपने छकड़े जोड़ लिये। उस समय भुण्डकी भुण्ड गोपियाँ वहाँ उपस्थित होकर चित्र लिखोंके समान खड़ी हो गयीं, कोई-कोई विकलतासे गिर गईं। गोपियोंकी अधिक विकलता देख श्रीकृष्णने उन्हें शीघ्र ही पुनः लौट आनेका आश्वासन दिया रथ और गाड़ियाँ चल पड़ी। रथपर बैठे-राम-श्याम को गोपियाँ तब तक देखती रही जब तक रथकी ध्वजा और उड़ती रज दीखती रहीं, वे वहाँसे हटीं नहीं। फिर वे भगवान्के पीछे लौटनेकी आशा छोड़ लौट आईं। और प्यारेके चरित्रोंका एक साथ बैठ कर गुणगान करने लगीं।

भगवान् भी अपने बड़े भाई राम और अक्रूरके साथ पापोंको दूर करने वाली कालिन्दीके किनारे पहुँचे। वहाँ हाथ पैर धोकर नीलमणि-सा निर्मलयमुनाका मधुर जल पीकर वृद्धोंकी छायामें बलदाऊके साथ भगवान् रथमें आ विराजे। अक्रूरजी जलमें डुबकी लगा सनातन ब्रह्मका ध्यान करने लगे। उन्होंने वहाँ जलमें रामकृष्णको भी देखा। अक्रूर विचारमें पड़ गये। वे तो रथमें बैठे हैं, फिर यहाँ कैसे आ गये? जब जलसे बाहर निकलकर व्यों ही देखा, तो रामकृष्णको उसी प्रकार बैठे पाया। फिर जलमें डुबकी लगाने पर सहस्रों फणवाले सहस्र नागके दर्शन हुए, उनकी गोदीमें भगवान्का स्वरूप जो मेघसा श्यामवर्ण है, पीताम्बर धारण किये हैं, चार भुजाएँ, शान्त मुख-मुद्रा है, कमलके समान नेत्र हैं, दर्शन किये। इस प्रकारके स्वरूपको देखकर परमभक्तियुक्त हो सिरसे प्रणाम कर हाथ जोड़ अक्रूर धीरे-धीरे स्तुति करने लगे—

भ्रुस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ।
सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोऽङ्गभूताः ॥

(भा. १०।४०।२)

श्रीकृष्णकी उन्होंने ईश्वरोंका ईश्वर मानकर स्तुति की। हे श्रीकृष्ण! पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश, अहंकार, माया, पुरुष, मन, इन्द्रियाँ और सब विषयोंके अधिष्ठातृदेवताजगतके कारणभूत आपके अंश हैं।

अग्निमुखं तेष्वनिर्गम्यरीक्षणं, सूर्पोनमो नाभिरथो विश्रुतिः।
द्यौःकं सुरेन्द्रास्तवबाह्वोऽर्णवाः कुक्षिर्मदप्रमाणबलंप्रकल्पितम्॥

(भा. १०।४०।१३)

अग्नि आपका मुख है, पृथ्वी चरण, सूर्य नेत्र आकाश नाभि, दिशा कान, स्वर्ग शिर, देवता भुजा, समुद्र कुक्षि और वायु आपके प्राण कहे जाते हैं। अक्रूरने इस प्रकार भगवान्की अनेक रूपसे स्तुति कर दशावतारके रूपमें ध्यान किया।

यानि यानोह रूपाणि क्रीडनार्थं विभवि हि ।

तैरामृष्टशुभो लोकाः मुदा गायन्ति ते यशः ॥

नमः कारणमत्स्याय प्रलयाधिचराय च ।

हयशीर्ष्णं नमस्तुभ्यं मधुकैटभमृत्यवे ॥

अक्रूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ।

क्षित्युदारविहाराय नमः शूकरमूर्तये ॥

नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ।

वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥

नमो भृशूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ।

नमस्ते रघुवर्याय रावणातकराय च ॥

नमस्ते वासुदेवाय नमः संकर्वणाय च ।

प्रधुम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥

नमो बुद्धाय शुद्धाय दंत्यदानवमोहिने ।

श्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥

(भा. १०।४०।१६ से २२)

आप क्रीड़ा करनेके लिये जो जो रूप धारण करते हैं, उन्हींके यशको गाकर लोग शोक रहित होते हैं। प्रयोजनसे मत्स्यरूप धारण करके प्रलयके समुद्रमें विचरण करनेवाले हे मत्स्यदेव! आपको प्रणाम है। मधुकैटभ दैत्यको मारने वाले हयग्रीवमूर्ति! आपको प्रणाम है। मन्दराचलको धारण करनेवाले व्यापक कच्छपमूर्ति! आपको प्रणाम है। पृथ्वीका उद्धार करनेकी क्रीड़ा करनेवाले वाराह अवतार रूप आपको प्रणाम है। हे साधु पुरुषोंके भयको हरण

करनेवाले अद्भुत नृसिंह मूर्ति ! आपको प्रणाम है । त्रिलोकीको नापनेवाले वामन रूप आपको प्रणाम है । गर्विष्ठ क्षत्रिय कुलरूप बनको छेदन करनेवाले परशुराम मूर्ति ! आपको प्रणाम है । रावणको मारने वाले रामचन्द्रमूर्ति ! आपको नमस्कार है । वासुदेव, संवर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्धरूप चतुर्व्यूहमूर्ति भक्तोंके पति आपको प्रणाम है । दैत्योंको मोहित करने वाले बुद्धमूर्ति ! आपको प्रणाम है । श्लेच्छरूप क्षत्रियोंके संहार करनेवाले कल्किमूर्ति ! आपको प्रणाम है ।

हे भगवन ! यह जीव लोक आपकी मायासे मोहित हो इस अनित्य देह आदिमें मैं और मेरी बुद्धि करके कर्म मार्गमें भ्रमण करता हूँ । हे विभो ! मैं भी स्वप्नके तुल्य अस्थिर जो देह, पुत्र घर, स्त्री धन स्वजन आदि है, उनमें मूर्खतासे सत्य बुद्धि कर भ्रमण कर रहा हूँ ।

नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ।
पुरुषेशप्रधानाय बहुरोऽनंतशक्तये ॥
नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ।
हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रमो ॥

(भा. १०।४०।२६-३०)

विज्ञानमूर्ति ! ज्ञानके कारण काल, कर्म, स्वभाव आदिके नियन्ता, परिपूर्ण स्वरूप अनन्त शक्तिमय परब्रह्म आपको प्रणाम है । सबके अधिपता और आश्रय आपको मेरा प्रणाम है । हे इन्द्रियोंके स्वामी हे प्रभु, आपको मैं नमस्कार करता हूँ । मैं आपका शरणागत हूँ, आप मेरा पालन करें ।

इस प्रकार स्तुति करते हुए अक्रूरको जब बहुत समय हो गया, तो जलमें अपने स्वरूपका दर्शन देकर फिर भगवान् कृष्णने अपना स्वरूप अन्तर्धान कर लिया, जैसे नट अपने स्वांगको समेट लेता है ।

श्रीकृष्णके स्वरूपको अन्तर्हित हुआ देख अक्रूर जलसे बाहर निकल आवश्यक कार्य पूर्ण कर विस्मय करते-करते रथके निकट आये । तब श्रीकृष्णने मुसकराते हुए अक्रूरसे पूछा-मुझे ऐसा मालूम होता है कि आपने पृथ्वीमें आकाशमें जलमें कोई अद्भुत दृश्य देखा है । यह आपकी आकृति इसको प्रकट कर रही है । अक्रूरने कहा—हे नटराज ! हे लीला पुरुषोत्तम ! पृथ्वी, जल और आकाशमें जो भी कुछ है, वह सब कुछ विश्वरूप आपके भीतर ही है, अतएव जबमें आपको ही देख रहा हूँ, तब मेरा और भी कुछ देखना बाकी है ? हे परमेश्वर ! सर्वत्र मुझे आपहीके दर्शन होते हैं । इस प्रकार उत्तर देकर अक्रूरने मथुरापुरीके लिये रथको चलाया, और संध्याके समय सभी वहाँ पहुँच गये । श्रीकृष्णने रथसे उतर कर अपने साथियोंसे विश्राम करनेको कहा और अक्रूरसे कहा—आप रथ ले जाइये । पुरीमें प्रवेश कीजिये, हम पुरी बादमें देखेंगे । अक्रूरने अपने घर ले जानेका अत्यधिक आग्रह किया, परन्तु श्रीकृष्णने सारे कार्योंसे निवृत्ति लेकर मैं आपके घर आऊँगा, ऐसा वचन दिया । अक्रूर भगवान्की लीलाओंका गुणगान व स्मरण करते हुए वहाँसे विदा हुए ।

—बागरोड़ी कृष्णचन्द्र शास्त्री साहित्यरत्न

श्रीभगवन्नामकी महिमा

वेपन्ते दुरितानि मोहमहिमा संमोहमालम्बते
सातकं नखरंजनीं कलयति श्रीचित्रगुप्तः कृती ।
सानन्दं मधुपर्कसम्भृतिविधौ वेधाः करोत्युद्यमं
वस्तुं नाम्नि तवेश्वराभिलषिते ब्रूमः किमन्यत् परम् ॥

नामनिष्ठ किसी भक्तने कहा है—हे ईश्वर ! आपके नामोच्चार करनेकी अभिलाषा करने मात्रसे सम्पूर्ण पाप काँपने लग जाते हैं, संसारमें बड़ा हुआ अर्थात् पुत्र, पौत्र, कलत्र, भृत्यादि में आसक्तिरूप मोह भी मोहित होकर भाग जाता है । और सकल जन्तुओंके पुण्य-पापके लेखक, यमराजके प्रधानमंत्री, न्यायशील, कुशल श्रीचित्रगुप्तजी भी अपनी नहरनीको शीघ्र ही आशंकापूर्वक उठाते हैं, अर्थात् इस नामोच्चारका अभिलाषावाले जीवका नाम तो मैंने पापियों की श्रेणीमें लिख रक्खा था, परन्तु अब तो इसने नामोच्चार करनेकी अभिलाषा की है, अतः इसका नाम पापियोंकी श्रेणीसे काट देना चाहिए, नहीं तो श्रीनाम माहात्म्यके विशिष्ट ज्ञाता श्रीयमराजजी मुझ पर कहीं कुपित न हो जायँ, इस विचारसे ही चित्रगुप्तजी अपनी नहरनीको शीघ्र उठाते हैं । एवं श्रीब्रह्माजी भी यह नामोच्चारकी अभिलाषावाले व्यक्ति ब्रह्माण्डको भेदकर अवश्य ही भगवद् धामको जायगा' ऐसा विचार कर उसकी पूजाके किए आनन्दपूर्वक मधुपर्कादि सामग्री जुटानेके लिए उद्यत हो जाते हैं । अतएव हे प्रभो ! आपके मङ्गलमय श्रीनामका माहात्म्य इसके अधिष्ठ और क्या कहें ?

(पद्यावली से)

• श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गी जयतः •

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ
कंसटीला, मथुरा (उ० प्र०)
११ अक्टूबर, १९६५

सादर निवेदन

आदरणीय महोदय,

पिछले वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरामें आगामी ८ कार्तिक, २५ अक्टूबर, सोमवारको श्रीश्रीगुरुगौराङ्ग-राधाविनोदविहारीजीका अन्नकूट महोत्सव एवं श्रीश्रीगोवर्द्धन-पूजाका अनुष्ठान होगा।

अतः धर्म-प्राण सबजनोंसे अनुरोध है कि आप महानुभाव तन, मन वचन और धन द्वारा सहायता एवं स्वयं योगदान कर उक्त महदनुष्ठानको सब प्रकारसे सफल बनाकर हमें उत्साहित करें तथा भक्ति-उन्मुखी सुकृति अर्जन करें।

निवेदक—

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके सभ्यवृन्द

❀ कार्य-क्रम ❀

मङ्गलारति एवं संकीर्तन—प्रातः ४ बजे से ७ बजे तक
श्रीचैतन्यचरितामृतसे अन्नकूट-प्रसङ्ग पाठ—८ बजे से १० बजे तक
श्रीगोवर्द्धनपूजा—पूर्वाह्न १० बजे से १२ बजे तक
श्रीअन्नकूट महोत्सव दर्शन—४ बजे से ७ बजे शाम तक
संध्यारति, संकीर्तन, भाषण—७ बजे से ९ बजे रात तक